

Chapter आठ

मार्कण्डेय द्वारा नर-नारायण ऋषि की स्तुति

इस अध्याय में इसका वर्णन हुआ है कि किस तरह मार्कण्डेय ऋषि ने तपस्या की, अपनी शक्ति से कामदेव को और उसके साथियों को हराया और नर तथा नारायण रूपों में श्री हरि की स्तुति की।

श्री शौनक श्री मार्कण्डेय की असामान्य दीर्घ आयु के विषय में संशयग्रस्त थे। उन्होंने शौनक के ही वंश में जन्म लिया था किन्तु करोड़ों वर्ष पूर्व प्रलय के सागर में अकेले बहते हुए बरगद के पत्ते पर लेटे एक अद्भुत शिशु को देखा था। शौनक को लग रहा था कि मार्कण्डेय ब्रह्मा के दो दिनों तक जीवित रहे, अतः उन्होंने श्री सूत गोस्वामी से इसके विषय में बतलाने के लिए कहा।

सूत गोस्वामी ने उत्तर दिया कि अपने पिता से ब्राह्मण-दीक्षा पाकर मार्कण्डेय ने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया। तब उन्होंने छः मन्वन्तरों तक भगवान् हरि की पूजा की। सातवें मन्वन्तर में इन्द्र ने ऋषि की तपस्या भंग करने के लिए कामदेव तथा उसके संगियों को भेजा। किन्तु मार्कण्डेय ने अपनी तपस्या से प्राप्त शक्ति द्वारा उन्हें हरा दिया।

तब मार्कण्डेय पर दया दिखाने के उद्देश्य से श्री हरि उनके समक्ष नर-नारायण के रूप में प्रकट हुए। श्री मार्कण्डेय ने उनके चरणों पर दण्डवत् प्रणाम किया और तब सुखदायक आसन, पाद-प्रक्षालन के लिए जल तथा अन्य योग्य उपहार देकर उनकी पूजा की। तत्पश्चात् उन्होंने स्तुति की, “हे सर्वशक्तिमान प्रभु! आप सारे प्राणियों को प्राणवायु प्रदान करते हैं और तीनों लोकों की रक्षा भी करते हैं, दुख को दूर करते हैं तथा मुक्ति प्रदान करते हैं। आप उन लोगों को, जिन्होंने आपकी शरण ले रखी है, किसी प्रकार के कष्ट से पराजित नहीं होने देते। आपके चरणकमलों की प्राप्ति ही बद्धजीवों का शुभ लक्ष्य होता है और आपकी सेवा से उनकी सारी मनोकामनाएँ पूरी होती हैं। सतोगुण में सम्पन्न आपकी लीलाएँ किसी को भी भौतिक जीवन से मोक्ष दिला सकती हैं। इसलिए जो बुद्धिमान हैं, वे आपके सात्विक साकार रूप श्री नारायण की, आपके अनन्य भक्त नर समेत, पूजा करते हैं।

“यदि जीव वेदों में प्रस्तुत तथा अखिल ब्रह्माण्ड के गुरु स्वरूप आपके द्वारा चलाये हुए ज्ञान को प्राप्त करता है, तो माया से विमोहित जीव आपको प्रत्यक्ष समझ सकता है। यहाँ तक कि ब्रह्मा जैसे महान् चिन्तक भी सांख्य योग के मार्ग पर संघर्ष करते हुए आपके स्वरूप को जानने के प्रयास में मोहग्रस्त हो जाते हैं। आप स्वयं ही सांख्य तथा अन्य दर्शन प्रकट करते हैं और इस तरह जीवात्मा के उपाधि-आवरण के नीचे आपका असली स्वरूप छिपा रहता है। हे महापुरुष, मैं आपका स्वागत करता हूँ।”

श्रीशौनक उवाच

सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर ।

तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शौनकः उवाच—श्री शौनक ने कहा; सूत—हे सूत गोस्वामी; जीव—आप जीवित रहें; चिरम्—दीर्घकाल तक; साधो—हे साधु; वद—कृपा करके कहें; नः—हमसे; वदताम्—वक्ताओं के; वर—श्रेष्ठ; तमसि—अंधकार में; अपारे—अपार; भ्रमताम्—विचरण करते हुए; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; त्वम्—तुम; पार-दर्शनः—उस किनारे को देखने वाला।

श्री शौनक ने कहा : हे सूत, आप दीर्घायु हों। हे साधु, हे वक्ता श्रेष्ठ, आप हमसे इसी तरह बोलते रहें। निस्सन्देह, आप ही मनुष्यों को उस अज्ञान से निकलने का मार्ग दिखा सकते हैं जिसमें वे विचरण कर रहे हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार, मुनियों ने देखा कि सूत गोस्वामी श्रीमद्भागवत की कथा समाप्त करने वाले हैं, इसलिए उन्होंने अनुरोध किया कि वे सबसे पहले मार्कण्डेय ऋषि की कथा कहें।

आहुश्चिरायुषमृषिं मृकण्डतनयं जनाः ।

यः कल्पान्ते ह्यूर्विरितो येन ग्रस्तमिदं जगत् ॥ २ ॥

स वा अस्मत्कुलोत्पन्नः कल्पेऽस्मिन्भार्गवर्षभः ।

नैवाधुनापि भूतानां सम्प्लवः कोऽपि जायते ॥ ३ ॥

एक एवार्णवे भ्राम्यन्ददर्शं पुरुषं किल ।

वटपत्रपुटे तोकं शयानं त्वेकमद्भुतम् ॥ ४ ॥

एष नः संशयो भूयान्सूत कौतूहलं यतः ।

तं नश्छिन्धि महायोगिन्पुराणेष्वपि सम्मतः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

आहुः—कहते हैं; चिर-आयुषम्—अत्यधिक दीर्घ आयु वाला; ऋषिम्—ऋषि; मृकण्ड-तनयम्—मृकण्ड के पुत्र को; जनाः—लोग; यः—जो; कल्प-अन्ते—ब्रह्मा का एक दिन पूरा होने पर; हि—निस्सन्देह; उर्वरितः—एकान्त में रहते हुए; येन—जिस (प्रलय) से; ग्रस्तम्—ग्रस्त; इदम्—यह; जगत्—समूचा ब्रह्माण्ड; सः—वह, मार्कण्डेय; वै—निस्सन्देह; अस्मत्-कुल—मेरे ही परिवार में; उत्पन्नः—उत्पन्न; कल्पे—ब्रह्मा के दिन में; अस्मिन्—इस; भार्गव-ऋषभः—भृगु मुनि का परम प्रसिद्ध वंशज; न—नहीं; एव—निश्चय ही; अधुना—हमारे युग में; अपि—भी; भूतानाम्—सारी सृष्टि का; सम्प्लवः—बाढ़ से संहार; कः—कोई; अपि—तनिक भी; जायते—उत्पन्न हुआ है; एकः—अकेला; एव—निस्सन्देह; अर्णवे—महासागर में; भ्राम्यन्—घूमते हुए; ददर्श—देखा; पुरुषम्—पुरुष को; किल—कहा जाता है; वट-पत्र—बरगद की पत्ती के; पुटे—दोने में; तोकम्—एक शिशु; शयानम्—लेटा हुआ; तु—लेकिन; एकम्—एक; अद्भुतम्—अद्भुत; एषः—यह; नः—हमारा; संशयः—सन्देह; भूयान्—महान्; सूत—हे सूत गोस्वामी; कौतूहलम्—उत्सुकता; यतः—जिसके कारण; तम्—उसको; नः—हमारे लिए; छिन्धि—काट डालिये; महा-योगिन्—हे महान् योगी; पुराणेषु—पुराणों के; अपि—निस्सन्देह; सम्मतः—सार्वजनिक रूप से स्वीकृत (दक्ष ज्ञाता के रूप में)।

विद्वानों का कहना है कि मृकण्डु के पुत्र, मार्कण्डेय ऋषि, अति दीर्घ आयु वाले मुनि थे और ब्रह्मा के दिन के अन्त होने पर वे ही एकमात्र बचे हुए थे जबकि सारा ब्रह्माण्ड प्रलय की बाढ़ में जलमग्न हुआ था। किन्तु यही मार्कण्डेय ऋषि, जोकि भृगुवंशियों में सर्वोपरि हैं, मेरे ही परिवार में ब्रह्मा के चालू दिन में जन्मे थे और हमने अभी ब्रह्मा के इस दिन का पूर्ण प्रलय नहीं देखा है। यही नहीं, यह भलीभाँति ज्ञात है कि मार्कण्डेय मुनि ने प्रलय के महासागर में असहाय होकर इधर-उधर घूमते हुए उस भयानक जल में एक अद्भुत पुरुष

को देखा—एक शिशु जो बरगद के पत्ते के दोने में अकेले लेटा था। हे सूत, मैं इन महर्षि मार्कण्डेय के विषय में अत्यधिक मोहग्रस्त तथा उत्सुक हूँ। हे महान् योगी, आप समस्त पुराणों के विद्वान माने जाते हैं, इसलिए मेरे संशय को दूर कीजिये।

तात्पर्य : ब्रह्मा के एक दिन में १२ घंटे होते हैं, जो ४३,२०० लाख वर्षों के तुल्य होते हैं और उनकी रात भी इतनी ही बड़ी होती है। स्पष्ट है कि मार्कण्डेय इस तरह के एक दिन और एक रात जीवित रहने के बाद ब्रह्मा के अगले दिन में भी इसी मार्कण्डेय रूप में रहते रहे। ऐसा लगता है कि जब ब्रह्मा की रात में प्रलय हुई तो यह ऋषि विनाश के भयावह जल में लगातार विचरण करते रहे और उसी जल में बरगद के पत्ते पर एक असामान्य पुरुष को लेटे देखा। मार्कण्डेय विषयक इन सारे रहस्यों को सूत गोस्वामी महर्षियों के अनुरोध पर स्पष्ट करेंगे।

सूत उवाच

प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः ।

नारायणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; प्रश्नः—प्रश्न; त्वया—तुम्हारे द्वारा; महा-ऋषे—हे महर्षि शौनक; अयम्—यह; कृतः—बनाया हुआ; लोक—सम्पूर्ण जगत का; भ्रम—भ्रम; अपहः—दूर करने वाला; नारायण-कथा—भगवान् नारायण की कथा; यत्र—जिसमें; गीता—गाई जाती है; कलि-मल—कलियुग के कल्मष; अपहा—दूर करते हुए।

सूत गोस्वामी ने कहा : हे महर्षि शौनक, तुम्हारे इस प्रश्न से हर एक का मोह दूर हो सकेगा क्योंकि इसका सम्बन्ध भगवान् नारायण की कथाओं से है, जो इस कलियुग के कल्मष को दूर करती हैं।

प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कण्डेयः पितुः क्रमात् ।

छन्दांस्यधीत्य धर्मेण तपःस्वाध्यायसंयुतः ॥ ७ ॥

बृहद्ब्रतधरः शान्तो जटिलो वल्कलाम्बरः ।

बिभ्रत्कमण्डलुं दण्डमुपवीतं समेखलम् ॥ ८ ॥

कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये ।

अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन्सन्ध्ययोर्हरिम् ॥ ९ ॥

सायं प्रातः स गुरवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यतः ।

बुभुजे गुर्वनुज्ञातः सकृन्नो चेदुपोषितः ॥ १० ॥

एवं तपःस्वाध्यायपरो वर्षाणामयुतायुतम् ।

आराधयन्हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

प्राप्त—प्राप्त हुए; द्वि-जाति—द्वितीय जन्म का; संस्कारः—संस्कार; मार्कण्डेयः—मार्कण्डेय; पितुः—अपने पिता से; क्रमात्—क्रमशः; छन्दांसि—वैदिक स्तोत्र; अधीत्य—अध्ययन करके; धर्मेण—विधि-विधानों समेत; तपः—तपस्या में;

स्वाध्याय—तथा अध्ययन में; संयुतः—पूर्ण; बृहत्-व्रत—आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत; धरः—धारण करते हुए; शान्तः—शान्त; जटिलः—जटा सहित; वल्कल-अम्बरः—छाल के वस्त्र पहने; बिभ्रत्—लिए हुए; कमण्डलुम्—कमण्डल; दण्डम्—संन्यासी की डंडा; उपवीतम्—जनेऊ; स-मेखलम्—ब्रह्मचारी के कटिसूत्र सहित; कृष्ण-अजिनम्—काले मृग का चर्म; स-अक्ष-सूत्रम्—कमल के बीजों से बनी जपमाला; कुशान्—कुश घास; च—भी; नियम-ऋद्धये—अपनी आध्यात्मिक प्रगति को सरल बनाने के लिए; अग्नि—अग्नि रूप में; अर्क—सूर्य; गुरु—गुरु; विप्र—ब्राह्मण; आत्मसु—तथा परमात्मा; अर्चयन्—पूजा करते हुए; सन्ध्ययोः—दिन के प्रारम्भ तथा अन्त में; हरिम्—भगवान् को; सायम्—संध्या समय; प्रातः—तड़के; सः—वह; गुरवे—अपने गुरु से; भैक्ष्यम्—भीख माँगने से मिली भिक्षा; आहत्य—लाकर; वाक्-यतः—संयमित वाणी से; बुभुजे—भाग लिया; गुरु-अनुज्ञातः—अपने गुरु द्वारा आमंत्रित; सकृत्—एक बार; न—नहीं (आमंत्रित); उ—निस्सन्देह; चेत्—यदि; उपोषितः—उपवास करते हुए; एवम्—इस तरह; तपः—स्वाध्याय-परः—तपस्या तथा वैदिक वाङ्मय के अध्ययन में तत्पर; वर्षाणाम्—वर्षों; अयुत-अयुतम्—दस हजार के दस हजार गुने; आराधयन्—पूजा करते हुए; हृषीक-ईशम्—इन्द्रियों के परम स्वामी, भगवान् विष्णु; जिग्ये—जीत लिया; मृत्युम्—मृत्यु को; सु-दुर्जयम्—जीत पाना असम्भव।

अपने पिता द्वारा ब्राह्मण की दीक्षा प्राप्त करने के लिए किये गये संस्तुत अनुष्ठानों द्वारा शुद्ध बन कर, मार्कण्डेय ने वैदिक स्तोत्रों का अध्ययन किया और विधि-विधानों का कठोरता से पालन किया। वे तपस्या तथा वैदिक ज्ञान में आगे बढ़ गये और जीवन-भर ब्रह्मचारी रहे। अपनी जटा से तथा छाल से बने अपने वस्त्रों से अत्यन्त शान्त प्रतीत होते हुए, उन्होंने अपनी आध्यात्मिक प्रगति को योगी का कमण्डल, दंड, जनेऊ, ब्रह्मचारी पेटी, काला मृग-चर्म, कमल के बीज की जपमाला तथा कुश के समूह को धारण करके और आगे बढ़ाया। उन्होंने दिन की सन्धियों पर भगवान् के पाँच रूपों—यज्ञ-अग्नि, सूर्य, गुरु, ब्राह्मण तथा उसके हृदय के भीतर परमात्मा की नियमित पूजा की। वे प्रातः तथा सायंकाल भिक्षा माँगने जाते और लौटने पर सारा एकत्रित भोजन अपने गुरु को भेंट कर देते। जब गुरु उन्हें आमंत्रित करते, तभी वे मौन भाव से दिन में एक बार भोजन करते, अन्यथा उपवास करते। इस तरह तपस्या तथा वैदिक अध्ययन में समर्पित मार्कण्डेय ऋषि ने इन्द्रियों के परम प्रभु भगवान् की करोड़ों वर्षों तक पूजा की और इस तरह उन्होंने दुर्जय मृत्यु को जीत लिया।

ब्रह्मा भृगुर्भवो दक्षो ब्रह्मपुत्राश्च येऽपरे ।

नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नतिविस्मिताः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा—ब्रह्मा; भृगुः—भृगु मुनि; भवः—शिवजी; दक्षः—दक्ष प्रजापति; ब्रह्म-पुत्राः—ब्रह्मा के महान् पुत्र; च—तथा; ये—जो; अपरे—अन्य; नृ—मनुष्य; देव—देवतागण; पितृ—पूर्वज; भूतानि—भूतप्रेत; तेन—उससे (मृत्यु पर विजय); आसन्—सबके सब हो गये; अति-विस्मिताः—अत्यन्त चकित।

मार्कण्डेय ऋषि की उपलब्धि से ब्रह्मा, भृगु मुनि, शिवजी, प्रजापति दक्ष, ब्रह्मा के महान् पुत्र, मनुष्यों में से अन्य अनेक लोग, देवता, पूर्वज तथा भूतप्रेत—सभी चकित थे।

इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपःस्वाध्यायसंयमैः ।

दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशान्तरात्मना ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार से; बृहत्-व्रत-धरः—ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करते हुए; तपः-स्वाध्याय-संयमैः—अपनी तपस्या, वेदाध्ययन तथा विधि-विधानों के द्वारा; दध्यौ—ध्यान किया; अधोक्षजम्—दिव्य भगवान् पर; योगी—योगी; ध्वस्त—विनष्ट; क्लेश—सारे कष्ट; अन्तः-आत्मना—अपने अंतस्थ मन से।

इस तरह भक्तियोगी मार्कण्डेय ने तपस्या, वेदाध्ययन तथा आत्मानुशासन द्वारा कठोर ब्रह्मचर्य धारण किया। फिर सारे उत्पातों से मुक्त अपने मन से वे अन्दर की ओर मुड़े और भगवान् का ध्यान किया जो भौतिक इन्द्रियों के परे स्थित है।

तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं महायोगेन योगिनः ।

व्यतीयाय महान्कालो मन्वन्तरषडात्मकः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; एवम्—इस प्रकार; युञ्जतः—स्थिर करते हुए; चित्तम्—मन; महा-योगेन—योग के शक्तिशाली अभ्यास से; योगिनः—योगी; व्यतीयाय—बीत गया; महान्—महान्; कालः—कालखण्ड; मनु-अन्तर—मनु की आयु; षट्—छः; आत्मकः—से युक्त।

जब यह योगी इस तरह महान् योगाभ्यास द्वारा अपने मन को एकाग्र कर रहा था, तो छः मनुओं की आयु के बराबर (मन्वन्तर) विपुल समय बीत गया।

एतत्पुरन्दरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन्किलान्तरे ।

तपोविशङ्कितो ब्रह्मन्नारेभे तद्विघातनम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; पुरन्दरः—राजा इन्द्र ने; ज्ञात्वा—जान कर; सप्तमे—सातवें; अस्मिन्—इस; किल—निस्सन्देह; अन्तरे—मनु के राज्य में; तपः—तपस्या का; विशङ्कितः—भयभीत होकर; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण शौनक; आरेभे—आरम्भ कर दिया; तत्—उस तपस्या का; विघाटनम्—विघ्न।

हे ब्राह्मण, सातवें मन्वन्तर में, जोकि चालू युग है, इन्द्र को मार्कण्डेय की तपस्या का पता चला तो वह उनकी बढ़ती योगशक्ति से भयभीत हो उठा। इस तरह उसने मुनि की तपस्या में विघ्न डालने का प्रयास किया।

गन्धर्वाप्सरसः कामं वसन्तमलयानिलौ ।

मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ तथा ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

गन्धर्व-अप्सरसः—दैवी गायक तथा नर्तकियाँ; कामम्—कामदेव को; वसन्त—वसन्त ऋतु; मलय-अनिलौ—तथा मलय पर्वत से आने वाली प्रफुल्ल करने वाली वायु; मुनये—मुनि के पास; प्रेषयाम् आस—भेजा; रजः-तोक—काम का शिशु, लोभ; मदौ—नशा; तथा—भी।

मुनि की आध्यात्मिक तपस्या नष्ट करने के लिए, इन्द्र ने कामदेव, सुन्दर गन्धर्वों,

अप्सराओं, वसन्त ऋतु तथा मलय पर्वत से चलने वाली चन्दन की गन्ध से युक्त मन्द समीर के साथ साक्षात् लोभ तथा नशे (मद) को भेजा ।

ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्वं उत्तरे ।

पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्राख्या च शिला विभो ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; वै—निस्सन्देह; तत्—मार्कण्डेय ऋषि की; आश्रमम्—कुटिया में; जग्मुः—गये; हिम-अद्रेः—हिमालय पर्वत के; पार्श्वं—बगल में; उत्तरे—उत्तर में; पुष्पभद्रा नदी—पुष्पभद्रा नदी; यत्र—जहाँ; चित्रा-आख्या—चित्रा नामक; च—तथा; शिला—चोटी; विभो—हे शक्तिशाली शौनक ।

हे शक्तिशाली शौनक, वे मार्कण्डेय की कुटिया पर गये जो हिमालय पर्वत की उत्तरी दिशा में थी और जहाँ से पुष्पभद्रा नदी सुप्रसिद्ध चोटी चित्रा के निकट से बहती है ।

तदाश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलताञ्चितम् ।

पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयम् ॥ १८ ॥

मत्तभ्रमरसङ्गीतं मत्तकोकिलकूजितम् ।

मत्तबर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् ॥ १९ ॥

वायुः प्रविष्ट आदाय हिमनिर्झरशीकरान् ।

सुमनोभिः परिष्वक्तो ववावुत्तम्भयन्स्मरम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्—उसकी; आश्रम-पदम्—कुटिया का स्थान; पुण्यम्—पवित्र; पुण्य—पवित्र; द्रुम—वृक्षों; लता—तथा लताओं से; अञ्चितम्—विशेष रूप से अंकित; पुण्य—पवित्र; द्विज—ब्राह्मण मुनियों के; कुल—समूहों से; आकीर्णम्—परिपूरित; पुण्य—पवित्र; अमल—निर्मल; जल-आशयम्—जलाशयों से युक्त; मत्त—मतवाले; भ्रमर—भौरों के; सङ्गीतम्—संगीत से; मत्त—उन्मत्त बने हुए; कोकिल—कोयलों की; कूजितम्—कूक से; मत्त—मतवाले; बर्हि—मोरों के; नट-आटोपम्—नाचने के नशे में; मत्त—मतवाले; द्विज—पक्षियों के; कुल—परिवारों से युक्त; आकुलम्—पूरित; वायुः—मलयाचल की वायु ने; प्रविष्टः—प्रवेश करके; आदाय—लेकर; हिम—शीतल; निर्झर—झरनों के; शीकरान्—कुहरे के कणों; सुमनोभिः—फूलों से; परिष्वक्तः—आलिङ्गित होकर; ववौ—बहने लगी; उत्तम्भयन्—जागृत करते हुए; स्मरम्—कामदेव को ।

मार्कण्डेय ऋषि के आश्रम को पवित्र वृक्षों के कुंज अलंकृत कर रहे थे और बहुत-से साधु ब्राह्मण प्रचुर शुद्ध, पवित्र तालाबों का आनन्द उठाते हुए वहाँ रह रहे थे। वह आश्रम उन्मत्त भौरों की गुनगुनाहट से तथा उत्तेजित कोयलों की कुहू-कुहू से प्रतिध्वनित हो रहा था और प्रफुल्लित मोर इधर-उधर नाच रहे थे। निस्सन्देह उन्मत्त पक्षियों के अनेक परिवार उस कुटिया में झुंड के झुंड रह रहे थे। वहाँ पर इन्द्र द्वारा भेजी वसन्त की वायु पास के झरनों से शीतल बूँदों की फुहार लेते हुए प्रविष्ट हुई। वह वायु वन के फूलों के आलिङ्गन से सुगंधित थी। उसने कुटिया में प्रवेश किया और कामदेव की कामेच्छा को जगाना प्रारम्भ कर दिया।

उद्यच्चन्द्रनिशावक्रः प्रवालस्तबकालिभिः ।
गोपद्रुमलताजालैस्तत्रासीत्कुसुमाकरः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

उद्यत्—उदय होते; चन्द्र—चन्द्रमा के साथ; निशा—रात; वक्रः—मुख वाली; प्रवाल—नई कोपलों से; स्तबक—फूलों की; आलिभिः—पंक्तियों से; गोप—छिपी; द्रुम—वृक्षों; लता—तथा लताओं के; जालैः—समूह से; तत्र—वहाँ; आसीत्—प्रकट हुआ; कुसुम-आकरः—वसन्त ऋतु।

तब मार्कण्डेय के आश्रम में वसन्त ऋतु प्रकट हुआ। संध्याकालीन आकाश उदय हो रहे चन्द्रमा के प्रकाश से चमक रहा था मानो वह वसन्त का मुख हो और नई कोपले और ताजे फूल प्रायः वृक्षों और लताओं के झुंडों को आच्छादित किये हुए थे।

अन्वीयमानो गन्धर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः ।
अदृश्यतात्तचापेषुः स्वःस्त्रीयूथपतिः स्मरः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

अन्वीयमानः—अनुसरण करते हुए; गन्धर्वैः—गन्धर्वों द्वारा; गीत—गायकों; वादित्र—तथा वाद्य-यंत्र बजाने वालों की; यूथकैः—टोलियों द्वारा; अदृश्यत—दिखाई पड़ा; आत्त—पकड़े; चाप-इषुः—अपना धनुष तथा बाण; स्वः-स्त्री-यूथ—झुंड की झुंड स्वर्ग की स्त्रियों का; पतिः—स्वामी; स्मरः—कामदेव।

तब अनेक स्वर्ग की स्त्रियों का पति कामदेव वहाँ पर अपना धनुष और बाण लिए आया। उसके पीछे-पीछे गन्धर्वों की टोलियाँ थी जो वाद्य-यंत्र बजा रहे थे और गा रहे थे।

हुत्वाग्निं समुपासीनं ददृशुः शक्रकिङ्कराः ।
मीलिताक्षं दुराधर्षं मूर्तिमन्तमिवानलम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

हुत्वा—आहुति डाल कर; अग्निम्—अग्नि में; समुपासीनम्—योग-ध्यान में बैठे हुए; ददृशुः—देखा; शक्र—इन्द्र के; किङ्कराः—नौकरों ने; मीलित—बन्द; अक्षम्—नेत्र; दुराधर्षम्—अजेय; मूर्ति-मन्तम्—साक्षात्; इव—मानो; अनलम्—अग्नि।

इन्द्र के नौकरों ने ऋषि को ध्यान में आसीन पाया, जिसने अभी अभी यज्ञ-अग्नि में नियत आहुतियाँ डाली थीं। उसकी आँखें समाधि में बन्द थीं; वह अजेय प्रतीत हो रहा था मानो साक्षात् अग्नि हो।

ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः ।
मृदङ्गवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

ननृतुः—नाचीं; तस्य—उनके; पुरतः—समक्ष; स्त्रियः—स्त्रियाँ; अथ उ—तथा; गायकाः—गवैयों ने; जगुः—गाया; मृदङ्ग—मृदंग; वीणा—वीणा; पणवैः—तथा मंजीरों से; वाद्यम्—वाद्य संगीत; चक्रुः—किया; मनः-रमम्—मन को हरने वाला।

ऋषि के समक्ष स्त्रियाँ नाचने लगीं और गन्धर्वों ने मृदंग, वीणा तथा मंजीरों के साथ

मनोहर गीत गाये ।

सन्दधेऽस्त्रं स्वधनुषि कामः पञ्चमुखं तदा ।

मधुर्मनो रजस्तोक इन्द्रभृत्या व्यकम्पयन् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

सन्दधे—चढ़ाया; अस्त्रम्—हथियार; स्व-धनुषि—अपने धनुष पर; कामः—कामदेव ने; पञ्च-मुखम्—पाँच सिरों (दृष्टि, ध्वनि, गन्ध, स्पर्श तथा स्वाद) वाले; तदा—तब; मधुः—वसन्त; मनः—ऋषि का मन; रजः-तोकः—कामका शिशु, लोभ; इन्द्र-भृत्याः—इन्द्र के नौकर; व्यकम्पयन्—विचलित करने लगे ।

जब काम का पुत्र (साक्षात् लोभ), वसन्त तथा इन्द्र के अन्य नौकर मार्कण्डेय के मन को विचलित करने का प्रयत्न कर रहे थे, तो कामदेव ने अपना पाँच सिरों वाला तीर निकाला और उसे अपने धनुष पर चढ़ाया ।

क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कन्दुकैः स्तनगौरवात् ।

भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्त्रंसितस्त्रजः ॥ २६ ॥

इतस्ततो भ्रमदृष्टेश्चलन्त्या अनु कन्दुकम् ।

वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

क्रीडन्त्याः—खेल रही; पुञ्जिकस्थल्याः—पुञ्जिकस्थली नामक अप्सरा की; कन्दुकैः—गेंदों से; स्तन—उसके कुचों के; गौरवात्—अधिक भार से; भृशम्—अत्यधिक; उद्विग्न—बोझिल; मध्यायाः—जिसकी कटि; केश—उसके बालों से; विस्त्रंसित—गिरते हुए; स्त्रजः—फूल का हार; इतः ततः—इधर-उधर; भ्रमत्—विचरण करती; दृष्टेः—जिसकी आँखें; चलन्त्याः—चंचल; अनु कन्दुकम्—अपनी गेंद के पीछे; वायुः—वायु; जहार—उड़ा ले गया; तत्-वासः—उसका वस्त्र; सूक्ष्मम्—झीना; त्रुटित—ढीली; मेखलम्—पेटी ।

पुञ्जिकस्थली नामक अप्सरा अनेक गेंदों से खेलने का प्रदर्शन करने लगी । उसकी कमर उसके भारी स्तनों के भार से लचक रही थी और उसके बालों में गुँथे फूलों का हार बिखर रहा था । जब वह इधर-उधर दृष्टि डालती, गेंदों के पीछे दौड़ती, तो उसके झीने वस्त्र की पेटी ढीली पड़ गई और सहसा वायु उसके वस्त्र उड़ा ले गया ।

विससर्ज तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः ।

सर्वं तत्राभवन्मोघमनीशस्य यथोद्यमः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

विससर्ज—छोड़ा; तदा—तब; बाणम्—तीर; मत्वा—सोच कर; तम्—उसको; स्व—अपने द्वारा; जितम्—जीता हुआ; स्मरः—कामदेव; सर्वम्—यह सब; तत्र—ऋषि की ओर; अभवत्—हो गया; मोघम्—व्यर्थ; अनीशस्य—नास्तिक का; यथा—जिस तरह; उद्यमः—प्रयास ।

तब कामदेव ने यह सोच कर कि उसने ऋषि को जीत लिया है, अपना तीर चलाया । किन्तु मार्कण्डेय को बहकाने के ये सारे प्रयास निष्फल रहे जिस तरह नास्तिक के प्रयास

व्यर्थ जाते हैं।

त इत्थमपकुर्वन्तो मुनेस्तत्तेजसा मुने ।

दह्यमाना निववृतुः प्रबोध्याहिमिवाभकाः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; इत्थम्—इस तरह; अपकुर्वन्तः—हानि पहुँचाने का प्रयास करते; मुनेः—मुनि को; तत्—उसकी; तेजसा—शक्ति से; मुने—हे मुनि (शौनक); दह्यमानाः—जला हुआ अनुभव करते हुए; निववृतुः—विलग हो गये; प्रबोध्य—जगाकर; अहिम्—सर्प को; इव—मानो; अभकाः—बालक।

हे विद्वान शौनक, जब कामदेव तथा उसके अनुयायी मुनि को हानि पहुँचाने का प्रयास कर रहे थे, तो वे स्वयं उनकी शक्ति से जीवित ही दग्ध होते अनुभव करने लगे। इस तरह उन्होंने अपनी शैतानी बन्द कर दी जिस तरह सोते साँप को जगाने वाले बालक।

इतीन्द्रानुचरैर्ब्रह्मन्धर्षितोऽपि महामुनिः ।

यन्नागादहमो भावं न तच्चित्रं महत्सु हि ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; इन्द्र-अनुचरैः—इन्द्र के अनुयायियों द्वारा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; धर्षितः—धृष्टतापूर्वक आक्रमण किया गया; अपि—यद्यपि; महा-मुनिः—महामुनि; यत्—जिसको; न अगात्—झुके नहीं; अहमः—मिथ्या अहंकार का; भावम्—रूपान्तर को; न—नहीं; तत्—उस; चित्रम्—आश्चर्यजनक; महत्सु—महात्माओं के लिए; हि—निस्सन्देह।

हे ब्राह्मण, इन्द्र के अनुयायियों ने उद्धत होकर सन्त स्वभाव वाले मार्कण्डेय पर आक्रमण किया था; फिर भी वे मिथ्या अहंकार के किसी भी प्रभाव के आगे झुके नहीं। महात्माओं के लिए ऐसी सहिष्णुता तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है।

दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान्स्वराट् ।

श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात्परम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देख कर; निस्तेजसम्—अपनी शक्ति से रहित; कामम्—कामदेव को; स-गणम्—उसके संगियों समेत; भगवान्—शक्तिमान प्रभु; स्व-राट्—इन्द्र ने; श्रुत्वा—सुन कर; अनुभावम्—प्रभाव; ब्रह्म-ऋषेः—ब्रह्मर्षि का; विस्मयम्—आश्चर्य को; समगात्—प्राप्त हुआ; परम्—अत्यधिक।

बलशाली इन्द्र ने जब महर्षि मार्कण्डेय की योगशक्ति के विषय में सुना तो उसे अत्यधिक आश्चर्य हुआ। उसने देखा कि किस तरह कामदेव तथा उसके संगी महर्षि की उपस्थिति में शक्तिहीन हो गये थे।

तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं तपःस्वाध्यायसंयमैः ।

अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—मार्कण्डेय के; एवम्—इस तरह; युञ्जतः—स्थिर हुए; चित्तम्—मन को; तपः—तपस्या से; स्वाध्याय—वेदाध्ययन द्वारा; संयमैः—तथा संयम द्वारा; अनुग्रहाय—दया दिखाने के लिए; आविरासीत्—अपने को प्रकट किया; नर-नारायणः—नर तथा नारायण के रूप में; हरिः—भगवान् ने।

सन्त स्वभाव वाले मार्कण्डेय पर, जिन्होंने तपस्या, वेदाध्ययन तथा संयम के द्वारा आत्म-साक्षात्कार में अपने मन को पूरी तरह स्थिर कर लिया था, अपनी दया दिखलाने की इच्छा से भगवान् उनके समक्ष नर तथा नारायण रूपों में प्रकट हुए।

तौ शुक्लकृष्णौ नवकञ्जलोचनौ
 चतुर्भुजौ रौरववल्कलाम्बरौ ।
 पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्
 कमण्डलुं दण्डमृजुं च वैणवम् ॥ ३३ ॥
 पद्माक्षमालामुत जन्तुमार्जनं
 वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ ।
 तपत्तडिद्वर्णपिशङ्गरोचिषा
 प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

तौ—वे दोनों; शुक्ल-कृष्णौ—एक गोरा तथा दूसरा काला; नव-कञ्ज—खिले कमल के फूल के समान; लोचनौ—आँखों वाले; चतुः-भुजौ—चार भुजाओं वाले; रौरव—काला मृगचर्म; वल्कल—तथा पेड़ की छाल; अम्बरौ—वस्त्रों के रूप में; पवित्र—अत्यन्त पवित्र करने वाले; पाणी—हाथों वाले; उपवीतकम्—जनेऊ; त्रि-वृत्—तीन लड़ों वाले; कमण्डलुम्—जलपात्र, कमण्डल; दण्डम्—डण्डा, लाठी; ऋजुम्—सीधा; च—तथा; वैणवम्—बाँस का बना; पद्म-अक्ष—कमल के बीजों की; मालाम्—जपमाला; उत—तथा; जन्तु-मार्जनम्—सारे जीवों को शुद्ध बनाने वाले; वेदम्—वेदों को (दर्भ के पुंजों से प्रदर्शित); च—तथा; साक्षात्—प्रत्यक्ष; तपः—तपस्या; एव—निस्सन्देह; रूपिणौ—साक्षात्; तपत्—जलते हुए; तडित्—बिजली; वर्ण—रंग; पिशङ्ग—पीला; रोचिषा—तेज से; प्रांशु—अत्यन्त लम्बे; दधानौ—पहने हुए; विबुध-ऋषभ—देवताओं में प्रमुख; अर्चितौ—पूजित।

उनमें से एक गोरे वर्ण का और दूसरा साँवला था और उन दोनों के चार-चार बाजू थे। उनके नेत्र खिले कमल की पत्तियों जैसे थे और वे श्याम मृगचर्म तथा छाल का वस्त्र तथा तीन धागों वाला जनेऊ पहने थे। वे पवित्र करने वाले अपने हाथों में, यती का कमण्डल, सीधे बाँस का लट्टु और कमल के बीज की जपमाला तथा दर्भ के पुंजों के प्रतीक रूप में सबको पवित्र करने वाले वेदों को भी धारण किये हुए थे। उनका कद लम्बा था और उनका पीला तेज चमकती बिजली के रंग का था। वे साक्षात् तपस्या की मूर्ति रूप में प्रकट हुए थे और अग्रणी देवताओं द्वारा पूजे जा रहे थे।

ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी ।
 दृष्टोत्थायादरेणोच्चैर्नानामाङ्गेन दण्डवत् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; वै—निस्सन्देह; भगवतः—भगवान् के; रूपे—साकार रूप में; नर-नारायणौ—नर तथा नारायण; ऋषी—दोनों ऋषि; दृष्ट्वा—देख कर; उत्थाय—खड़े होकर; आदरेण—आदरपूर्वक; उच्चैः—अत्यधिक; ननाम—प्रणाम किया; अङ्गेन—अपने पूरे शरीर से; दण्ड-वत्—डंडे की तरह।

ये दोनों मुनि नर तथा नारायण भगवान् के साकार रूप थे। जब मार्कण्डेय ऋषि ने दोनों को देखा तो वे तुरन्त उठ खड़े हुए और तब पृथ्वी पर डंडे की तरह गिर कर अतीव आदर से उन्हें नमस्कार किया।

स तत्सन्दर्शनानन्दनिर्वृतात्मेन्द्रियाशयः ।

हृष्टरोमाश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, मार्कण्डेय; तत्—उनका; सन्दर्शन—दर्शन करने से; आनन्द—आनन्द से; निर्वृत—प्रसन्न; आत्म—जिसका शरीर; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; आशयः—तथा मन; हृष्ट—खड़े हुए; रोमा—शरीर के रोएँ; अश्रु—आँसुओं से; पूर्ण—भरे; अक्षः—नेत्र; न सेहे—असमर्थ; तौ—दोनों को; उदीक्षितुम्—देख पाने में।

उन्हें देखने से उत्पन्न हुए आनन्द ने मार्कण्डेय के शरीर, मन तथा इन्द्रियों को पूरी तरह तुष्ट कर दिया और उनके शरीर में रोमांच ला दिया और उनके नेत्रों को आँसुओं से भर दिया। भावविह्वल होने से मार्कण्डेय उन्हें देख पाने में असमर्थ हो रहे थे।

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व औत्सुक्यादाश्लिषन्निव ।

नमो नम इतीशानौ बभाशे गद्गदाक्षरम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

उत्थाय—खड़े होकर; प्राञ्जलिः—हाथ जोड़े; प्रह्वः—विनीत; औत्सुक्यात्—उत्सुकता के कारण; आश्लिषन्—आलिंगन करते हुए; इव—मानो; नमः—नमस्कार; नमः—नमस्कार; इति—इस प्रकार; ईशानौ—दोनों प्रभुओं से; बभाषे—कहा; गद्गद—आनन्द से रुद्ध; अक्षरम्—अक्षर।

सम्मान में हाथ जोड़े खड़े होकर तथा दीनतावश अपना सिर झुकाये मार्कण्डेय को इतनी उत्सुकता हुई कि उन्हें लगा कि वे दोनों ईश्वरों का आलिंगन कर रहे हैं। आनन्द से रुद्ध हुई वाणी से उन्होंने बारम्बार कहा “मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।”

तयोरामनमादाय पादयोरवनिज्य च ।

अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

तयोः—उनको; आसनम्—बैठने का स्थान; आदाय—देते हुए; पादयोः—उनके पैरों को; अवनिज्य—पखार कर; च—तथा; अर्हणेन—उपयुक्त आदरपूर्ण भेंटों से; अनुलेपेन—चन्दन तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यों से लेपित करके; धूप—धूप; माल्यैः—तथा फूल की मालाओं से; अपूजयत्—पूजा की।

उन्होंने उन दोनों को आसन प्रदान किया, उनके पैर धोये और तब अर्घ्य, चन्दन-लेप, सुगन्धित तेल, धूप तथा फूल-मालाओं की भेंट चढ़ाकर पूजा की।

सुखमासनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी ।
पुनरानम्य पादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सुखम्—आराम से; आसनम्—आसनों पर; आसीनौ—बैठे; प्रसाद—दया; अभिमुखौ—देने को उद्यत; मुनी—दो मुनियों के रूप में भगवान् के अवतारों को; पुनः—फिर से; आनम्य—प्रणाम करके; पादाभ्याम्—उनके पाँवों पर; गरिष्ठौ—अत्यन्त पूजनीय; इदम्—यह; अब्रवीत्—कहा ।

मार्कण्डेय ऋषि ने पुनः इन दो पूज्य मुनियों के चरणकमलों पर शीश झुकाया जो सुखपूर्वक बैठे थे और उन पर कृपा करने के लिए उद्यत थे। तब उन्होंने उनसे इस प्रकार कहा ।

श्रीमार्कण्डेय उवाच

किं वर्णये तव विभो यदुदीरितोऽसुः
संस्पन्दते तमनु वाङ्मनइन्द्रियाणि ।
स्पन्दन्ति वै तनुभृतामजशर्वयोश्च
स्वस्याप्यथापि भजतामसि भावबन्धुः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-मार्कण्डेयः उवाच—श्री मार्कण्डेय ने कहा; किम्—क्या; वर्णये—वर्णन करूँ; तव—आपके विषय में; विभो—हे सर्वशक्तिमान प्रभु; यत्—जिनसे; उदीरितः—चलाई जाती है; असुः—प्राणवायु; संस्पन्दते—जीवन पाती है; तम् अनु—पीछे-पीछे; वाक्—वाणी की शक्ति; मनः—मन; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; स्पन्दन्ति—कार्य करने लगती हैं; वै—निस्सन्देह; तनु-भृताम्—समस्त देहधारी जीवों का; अज-शर्वयोः—ब्रह्मा तथा शिव के स्वामी का; च—भी; स्वस्य—मेरा; अपि—भी; अथ अपि—तो भी; भजताम्—पूजा करने वालों के लिए; असि—हो; भाव-बन्धुः—घनिष्ठ प्रेमी मित्र ।

श्री मार्कण्डेय ने कहा : “हे सर्वशक्तिमान प्रभु, भला मैं आपका वर्णन कैसे कर सकता हूँ?” आप प्राणवायु को जागृत करते हैं, जो मन, इन्द्रियों तथा वाक्-शक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। यह सारे सामान्य बद्धजीवों पर, यहाँ तक कि ब्रह्मा तथा शिव जैसे महान् देवताओं पर भी, लागू होता है। अतएव यह निस्सन्देह, मेरे लिए भी सही है। तो भी, आप अपनी पूजा करने वालों के घनिष्ठ मित्र बन जाते हैं।

मूर्ती इमे भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः

क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै ।

नाना बिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं

सृष्ट्वा पुनर्ग्रससि सर्वमिवोर्णनाभिः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

मूर्ती—दो साकार रूप; इमे—ये; भगवतः—भगवान् के; भगवन्—हे प्रभु; त्रि-लोक्याः—तीनों लोकों के; क्षेमाय—कल्याण के लिए; ताप—भौतिक कष्ट की; विरमाय—समाप्ति के लिए; च—तथा; मृत्यु—मृत्यु पर; जित्यै—विजय के लिए; नाना—विविध; बिभर्षि—प्रकट करते हो; अविषुम्—रक्षा करने के लिए; अन्य—अन्य; तनूः—दिव्य शरीर;

यथा—जिस तरह; इदम्—इस ब्रह्माण्ड को; सृष्टा—उत्पन्न करके; पुनः—एक बार फिर; ग्रससि—निगल लेते हो; सर्वम्—पूरी तरह; इव—सदृश; ऊर्ण-नाभिः—मकड़ी।

हे भगवान्, आपके ये दो साकार रूप तीनों जगतों को परम लाभ प्रदान करने के लिए—भौतिक कष्ट की समाप्ति तथा मृत्यु पर विजय के लिए—प्रकट हुए हैं। हे प्रभु, यद्यपि आप इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं और इसकी रक्षा करने के लिए नाना प्रकार के दिव्य रूप धारण करते हैं, किन्तु आप इसे निगल भी लेते हैं जिस तरह मकड़ी पहले जाल बुनती है और बाद में उसे निगल जाती है।

तस्यावितुः स्थिरचरोशितुरङ्घ्रिमूलं
यत्स्थं न कर्मगुणकालरजः स्पृशन्ति ।
यद्वै स्तुवन्ति निनमन्ति यजन्त्यभीक्षणं
ध्यायन्ति वेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; अवितुः—रक्षक; स्थिर-चर—अचर तथा चर प्राणी; ईशितुः—परम नियन्ता; अङ्घ्रि-मूलम्—उनके चरणकमलों के तलवे; यत्-स्थम्—जिस पर स्थित है; न—नहीं; कर्म-गुण-काल—भौतिक कर्म, भौतिक गुणों तथा काल का; रजः—दूषण; स्पृशन्ति—छूते हैं; यत्—जिसको; वै—निस्सन्देह; स्तुवन्ति—प्रशंसा करते हैं; निनमन्ति—नमन करते हैं; यजन्ति—पूजा करते हैं; अभीक्षणम्—हर क्षण; ध्यायन्ति—ध्यान करते हैं; वेद-हृदयाः—जिन्होंने वेदों का आत्मसात् कर लिया है; मुनयः—मुनिगण; तत्-आप्त्यै—उन्हें प्राप्त करने के उद्देश्य से।

चूँकि आप सारे चर तथा अचर प्राणियों के रक्षक तथा परम नियन्ता हैं, इसलिए जो भी आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, उसे भौतिक कर्म, भौतिक गुण या काल के दूषण छू तक नहीं सकते। जिन महर्षियों ने वेदों के अर्थ को आत्मसात् कर रखा है, वे आपकी स्तुति करते हैं। आपका सान्निध्य प्राप्त करने के लिए वे हर अवसर पर आपको नमस्कार करते हैं, निरन्तर आपको पूजते हैं और आपका ध्यान करते हैं।

नान्यं तवाङ्घ्रियुपनयादपवर्गमूर्तेः
क्षेमं जनस्य परितोभिय ईश विद्मः ।
ब्रह्मा बिभेत्यलमतो द्विपरार्थधिष्यः
कालस्य ते किमुत तत्कृतभौतिकानाम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

न अन्यम्—अन्य नहीं; तव—तुम्हारे; अङ्घ्रि—चरणकमलों के; उपनयात्—प्राप्ति की अपेक्षा; अपवर्ग-मूर्तेः—जो साक्षात् मोक्ष हैं; क्षेमम्—लाभ; जनस्य—पुरुष के लिए; परितः—सभी दिशाओं में; भियः—भयभीत; ईश—हे ईश्वर; विद्मः—हम जानते हैं; ब्रह्मा—ब्रह्मा; बिभेति—भयभीत रहता है; अलम्—अत्यधिक; अतः—इस कारण से; द्वि-परार्थ—ब्रह्माण्ड की पूरी अवधि; धिष्यः—शासनकाल; कालस्य—काल का; ते—आपका स्वरूप; किम् उत—क्या कहा जाय; तत्-कृत—उस ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न; भौतिकानाम्—संसारी प्राणियों का।

हे प्रभु, ब्रह्मा भी, जोकि ब्रह्माण्ड की पूरी अवधि तक अपने उच्च पद का भोग करता है, काल के प्रवाह से भयभीत रहता है। तो उन बद्धजीवों के बारे में क्या कहा जाय जिन्हें

ब्रह्मा उत्पन्न करते हैं। वे अपने जीवन के पग-पग पर भयावने संकटों का सामना करते हैं। मैं इस भय से छुटकारा पाने के लिए आपके चरणमलों की जोकि साक्षात् मोक्ष स्वरूप हैं शरण ग्रहण करने के सिवाय और कोई साधन नहीं जानता।

तद्वै भजाम्यृतधियस्तव पादमूलं
 हित्वेदमात्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य ।
 देहाद्यपार्थमसदन्त्यमभिज्ञमात्रं
 विन्देत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तत्—इसलिए; वै—निस्सन्देह; भजामि—पूजा करता हूँ; ऋत-धियः—उनकी, जिनकी बुद्धि सदैव सत्य का अनुभव करती है; तव—तुम्हारे; पाद-मूलम्—चरणकमलों के तलवे; हित्वा—त्याग कर; इदम्—यह; आत्म-छदि—आत्मा का आवरण; च—तथा; आत्म-गुरोः—आत्म के गुरु का; परस्य—परब्रह्म का; देह-आदि—भौतिक शरीर तथा अन्य मिथ्या उपाधियाँ; अपार्थम्—व्यर्थ; असत्—अयथार्थ; अन्त्यम्—क्षणिक; अभिज्ञ-मात्रम्—पृथक् अस्तित्व की कल्पना करके; विन्देत—प्राप्त करता है; ते—आपसे; तर्हि—तब; सर्व—सारा; मनीषित—वांछित; अर्थम्—वस्तुएँ।

इसलिए मैं भौतिक शरीर तथा उन सारी वस्तुओं से, जो मेरी असली आत्मा को प्रच्छन्न करती हैं, अपनी पहचान का परित्याग करके आपके चरणकमलों की पूजा करता हूँ। ये व्यर्थ, अयथार्थ तथा क्षणिक आवरण, आपसे जिनकी बुद्धि समस्त सत्य को समेटने वाली है, पृथक् कल्पित मात्र किये जाते हैं। परमेश्वर तथा आत्मा के गुरु स्वरूप आपको प्राप्त करके मनुष्य प्रत्येक वांछित वस्तु प्राप्त कर लेता है।

तात्पर्य : जो व्यक्ति झूठे ही अपने को भौतिक देह या मन मानता है, वह अपने को भौतिक जगत का दुरुपयोग करने का अधिकारी समझता है। किन्तु जब हमें अपने नित्य आध्यात्मिक स्वभाव तथा सभी पर कृष्ण के परम स्वामित्व का बोध होता है, तो हम आध्यात्मिक ज्ञान के बल पर मिथ्या भोग-लालसा की मनोवृत्ति को त्याग देते हैं।

सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबन्धो
 मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य ।
 लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशान्त्यै
 नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—सतो; रजः—रजो; तमः—तमो; इति—इस प्रकार कहलाने वाले गुण; ईश—हे ईश्वर; तव—तुम्हारा; आत्म-बन्धो—हे आत्म के परम मित्र; माया-मयाः—आपकी माया से उत्पन्न; स्थिति-लय-उदय—पालन, विनाश तथा सृजन; हेतवः—कारण; अस्य—इस ब्रह्माण्ड के; लीलाः—लीलाओं के रूप में; धृताः—कल्पित; यत् अपि—यद्यपि; सत्त्व-मयी—सात्विक; प्रशान्त्यै—मोक्ष के लिए; न—नहीं; अन्ये—अन्य दो; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; व्यसन—खतरा; मोह—मोह; भियः—तथा भय; च—भी; याभ्याम्—जिससे।

हे प्रभु, हे बद्धजीव के परम मित्र, यद्यपि इस जगत की उत्पत्ति, पालन और संहार के

लिए आप सतो, रजो तथा तमोगुणों को जो आपकी मायाशक्ति हैं, स्वीकार करते हैं? किन्तु बद्धजीवों को मुक्त करने के लिए आप सतोगुण का प्रयोग करते हैं। अन्य दो गुण उनके लिए कष्ट, मोह तथा भय लाने वाले हैं।

तात्पर्य : लीला धृताः शब्द सूचित करते हैं ब्रह्मा का सृजन-कार्य, शिव का विध्वंसात्मक कार्य तथा विष्णु का पालन-पोषण कार्य, परब्रह्म भगवान् कृष्ण की लीलाएँ हैं। किन्तु अन्त में भगवान् विष्णु ही भौतिक मोह के चंगुल से छुड़ा सकते हैं जैसाकि सत्त्वमयी प्रशान्त्यै शब्दों से सूचित होता है।

हमारे रजोगुणी तथा तमोगुणी कर्म हमारे लिए तथा अन्यो के लिए महान् कष्ट, मोह तथा भय उत्पन्न करने वाले हैं, अतएव उनका परित्याग किया जाना चाहिए। मनुष्य को सतोगुण में स्थिर होकर आध्यात्मिक पद पर शान्तिपूर्वक जीवन बिताना चाहिए। सतोगुण का सार यह है कि सारे कार्यों में स्वार्थ को त्याग कर अपना सारा जीवन उन भगवान् कृष्ण को समर्पित कर दिया जाय जो हमारे जीवन के स्रोत हैं।

तस्मात्तवेह भगवन्नथ तावकानां

शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजन्ति ।

यत्सात्वताः पुरुषरूपमुशन्ति सत्त्वं

लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चान्यत् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; तव—तुम्हारा; इह—इस जगत में; भगवन्—हे भगवान्; अथ—तथा; तावकानाम्—आपके भक्तों के; शुक्लाम्—दिव्य; तनुम्—स्वरूप को; स्व-दयिताम्—अत्यन्त प्रिय; कुशलाः—आध्यात्मिक ज्ञान में दक्ष; भजन्ति—पूजा करते हैं; यत्—क्योंकि; सात्वताः—महान् भक्तगण; पुरुष—आदि भगवान् के; रूपम्—स्वरूप को; उशन्ति—मानते हैं; सत्त्वम्—सतोगुण; लोकः—आध्यात्मिक जगत; यतः—जिससे; अभयम्—निर्भीकता; उत—तथा; आत्म-सुखम्—आत्मा का सुख; न—नहीं; च—तथा; अन्यत्—अन्य कोई।

हे प्रभु, चूँकि निर्भीकता, आध्यात्मिक सुख तथा भगवद्धाम—ये सभी सतोगुण के द्वारा ही प्राप्त किये जाते हैं इसलिए आपके भक्त इसी गुण को आपकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति मानते हैं, रजो तथा तमोगुण को नहीं। इस तरह बुद्धिमान व्यक्ति आपके प्रिय दिव्य रूप को, जोकि शुद्ध सत्व से बना होता है, आपके शुद्ध भक्तों के आध्यात्मिक स्वरूपों के साथ पूजा करते हैं।

तात्पर्य : बुद्धिमान व्यक्ति देवताओं की पूजा नहीं करते क्योंकि वे रजो तथा तमोगुणों के सूचक हैं। ब्रह्मा रजोगुण के और शिव तमोगुण के सूचक हैं तथा इन्द्र आदि देवता भी भौतिक प्रकृति के गुणों के सूचक हैं। किन्तु विष्णु या नारायण शुद्ध सतोगुण के सूचक हैं जिससे मनुष्य को आध्यात्मिक जगत का साक्षात्कार, भय से मुक्ति तथा आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त होते हैं। ऐसे लाभ अशुद्ध भौतिक सतोगुण से कभी नहीं मिल सकते क्योंकि उसमें सदा रजो तथा तमोगुण मिले रहते हैं। जैसाकि इस श्लोक से स्पष्ट सूचित होता है ईश्वर का दिव्य स्वरूप नित्य सतोगुण से बना

होता है, अतएव उसमें भौतिक सतो, रजो या तमोगुण का लेश भी नहीं रहता ।

तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने
विश्वाय विश्वगुरवे परदैवताय ।
नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय
हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उस; नमः—मेरा नमस्कार; भगवते—भगवान् को; पुरुषाय—परम पुरुष; भूम्ने—सर्वव्यापी; विश्वाय—ब्रह्माण्ड के समस्त स्वरूप; विश्व-गुरवे—ब्रह्माण्ड के गुरु; पर-दैवताय—परम पूज्य देव; नारायणाय—नारायण को; ऋषये—ऋषि; च—तथा; नर-उत्तमाय—पुरुषों में श्रेष्ठ; हंसाय—नितान्त शुद्ध; संयत-गिरे—संयमित वाणी वाले; निगम-ईश्वराय—वैदिक शास्त्रों के स्वामी ।

मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ। वे ब्रह्माण्ड के सर्वव्यापक तथा सर्वस्व हैं और उसके गुरु भी हैं। मैं भगवान् नारायण को नमस्कार करता हूँ जो ऋषि के रूप में प्रकट होने वाले परम पूज्य देव हैं। मैं सन्त स्वभाव वाले नर को भी नमस्कार करता हूँ जो मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ हैं, जो पूर्ण सात्विक हैं, जिनकी वाणी संयमित है और जो वैदिक ग्रन्थों के प्रचारक हैं।

यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः
सन्तं स्वकेष्वसुषु हृद्यपि दृक्पथेषु ।
तन्माययावृतमतिः स उ एव साक्षा-
दाद्यस्तवाखिलगुरोरुपसाद्य वेदम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

यम्—जिसको; वै—निस्सन्देह; न वेद—नहीं पहचानते; वितथ—धोखेबाज; अक्ष-पथैः—काल्पनिक अनुभूति की विधियों द्वारा; भ्रमत्—घुमाया जाकर; धीः—जिसकी बुद्धि; सन्तम्—उपस्थित; स्वकेषु—अपने ही भीतर; असुषु—इन्द्रियों में; हृदि—हृदय के भीतर; अपि—भी; दृक्-पथेषु—बाह्य जगत की दृश्य वस्तुओं में; तत्-मायया—उसकी माया से; आवृत—ढकी; मतिः—ज्ञान; सः—वह; उ—भी; एव—ही; साक्षात्—प्रत्यक्ष; आद्यः—मूल रूप से (अज्ञान में); तव—तुम्हारा; अखिल-गुरोः—सारे जीवों के गुरु; उपसाद्य—प्राप्त करके; वेदम्—वेदों का ज्ञान ।

भौतिकतावादी की बुद्धि उसकी धोखेबाज इन्द्रियों की क्रिया से विकृत रहती है, इसलिए वह आपको तनिक भी पहचान नहीं पाता यद्यपि आप उसकी इन्द्रियों तथा हृदय में और उसकी अनुभूति की वस्तुओं में सदैव विद्यमान रहते हैं। मनुष्य का ज्ञान आपकी माया से आवृत होते हुए भी, यदि वह, सबों के गुरु आपसे, वैदिक ज्ञान प्राप्त करता है, तो वह आपको प्रत्यक्ष रूप से समझ सकता है।

यद्दर्शनं निगम आत्परहःप्रकाशं
मुह्यन्ति यत्र कवयोऽजपरा यतन्तः ।

तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं

वन्दे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसका; दर्शनम्—दर्शन; निगमे—वेदों में; आत्म—परमात्मा का; रहः—रहस्य; प्रकाशम्—प्रकाशित करता है; मुह्यन्ति—मोहित हो जाते हैं; यत्र—जिसमें; कवयः—बड़े बड़े विद्वान्; अज-पराः—ब्रह्मा इत्यादि; यतन्तः—यत्न करते हुए; तम्—उसको; सर्व-वाद—विभिन्न दर्शनों का; विषय—विषय; प्रतिरूप—अपने को उपयुक्त बनाकर; शीलम्—जिसका निजी स्वभाव; वन्दे—नमस्कार करता हूँ; महा-पुरुषम्—भगवान् को; आत्म—आत्मा से; निगूढ—छिपा हुआ; बोधम्—ज्ञान।

हे प्रभु, केवल वैदिक ग्रंथ ही आपके परम स्वरूप का गुह्य ज्ञान प्रकट करने वाले हैं, अतएव भगवान् ब्रह्मा जैसे महान् विद्वान् भी आगमन विधियों द्वारा आपको समझने के प्रयास में मोहित हो जाते हैं। हर दार्शनिक अपने विशेष चिन्तनपरक निष्कर्ष के अनुसार आपको समझता है। मैं उन परम पुरुष की पूजा करता हूँ जिनका ज्ञान बद्धात्माओं के आध्यात्मिक स्वरूप को आवृत करने वाली शारीरिक उपाधियों से छिपा हुआ है।

तात्पर्य : ब्रह्मा जैसे बड़े-बड़े देवता तक भगवान् को समझ पाने में विमोहित हो जाते हैं। हर दार्शनिक प्रकृति के गुणों के अनूठे संयोग द्वारा आवृत रहता है और इस तरह वह अपनी भौतिक स्थिति के अनुसार परब्रह्म का वर्णन करता है। इस तरह कठिन से कठिन आगमन प्रयास से भी समस्त ज्ञान का अन्त नहीं पाया जा सकता। सर्वोच्च ज्ञान तो भगवान् कृष्ण हैं और कोई भी व्यक्ति उनको पूर्ण समर्पण करके तथा प्रेमपूर्वक सेवा करके ही उन्हें समझ सकता है। इसीलिए मार्कण्डेय यहाँ पर कहते हैं—वन्दे महापुरुषम्—मैं उन महापुरुष की पूजा करता हूँ। जो लोग ईश्वर की पूजा करते हैं किन्तु साथ ही चिन्तन करते रहते हैं अथवा सकाम कर्मों में लगे रहते हैं, उन्हें मिश्रित तथा मोह में डालने वाले परिणाम मिलते हैं। शुद्ध होने के लिए भक्त को सारे सकाम कर्म तथा मानसिक चिन्तन त्याग देने चाहिए। उसी विधिसे, भगवान् के प्रति प्रेमाभक्ति से, उसे ब्रह्म का पूरा ज्ञान प्राप्त होगा। यही पूर्ण ज्ञान नित्य आत्मा को तुष्ट कर सकता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध के अन्तर्गत “मार्कण्डेय द्वारा नर-नारायण ऋषि की स्तुति” नामक आठवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।